राष्ट्रीय अस्मिता और हिन्दी कविता

भरवाड पोपटभाई बी.
उत्तर बुनियादी कन्या विधालय, चोटीला

हमारे प्राचीन आचार्यो ने भाव-विवेचन के अन्तर्गत राष्ट्रीयता जैसी किसी भाव का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु इतिहास से सिद्ध हो जाता है कि राष्ट्रीयता भी एक प्रबल भाव है । अपने ही देश में हमने अनेक युवकों एवं महापुरूषों को राष्ट्रीयता की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व समर्पित करते देखा है । इसकी प्रबलता तो इसी से सिद्ध है कि कई बार राष्ट्रीयता की प्रेरणा के सम्मुख अन्य स्थायीभाव-वात्सल्य, रति, शोक आदि फीके पड गए हैं । स्वातंत्र्य-आन्दोलन में भाग लेने वाले व्यक्तियों का अपने दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन को ठुकराकर राष्ट्रीयता की आग में कूद पडना यही सिद्ध करता है कि राष्ट्रीयता का भाव सभी अन्य प्रमुख भावों से ऊपर उठ जाने की भी क्षमता से युक्त है, फिर भी हमारे सामने दो प्रश्न हैं-एक तो यह है कि ऐसे सबल भाव का प्राचीन आचार्यो ने उल्लेख क्यों नहीं किया, और दूसरे, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इनका स्वरूप क्या है इस बात पर ध्यान दिया जाय तो इसे किस रस में स्थान देना उचित है ? हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता का अन्वेषण करने से पूर्व इन दो पर विचार कर लेना आवश्यक है ।

भारतीय आचार्यो ने रस-सिद्धान्त के अन्तर्गत भावों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करते हुए उन्हें मुख्यतः दो वर्गो में विभाजित किया है-(१) स्थायीभाव या भावना और (२) संचारी भाव । स्थायीभावों के अन्तर्गत नौ, दस या ग्यारह-भावों की चर्चा की गयी है उनमें 'राष्ट्रीयता' का नाम नहीं आता । इसके दो कारण हैं-एक तो हमारे आचार्यो ने स्थायी भाव के अन्तर्गत चिरन्तन भावनाओं का ही उल्लेख किया है, जिनका मानवहृदय की मूल प्रवृत्तियों से गहरा सम्बन्ध है । 'राष्ट्रीयता' सर्वकालीन और सार्वलौकिक भाव नहीं है, अतः उसका उल्लेख न होना स्वाभाविक ही था । दूसरे, हमारी प्राचीन संस्कृति में राष्ट्रीय एकता की भावना आधुनिक राष्ट्रीयता के रूप में प्रायः अविकसित हो रही है, अतः उसकी कल्पना करना संभव नहीं था । राष्ट्रीयता भौगोलिक एवं राजनीतिक सीमाओं पर अवलम्बित तथा विश्व-बन्धुत्व की व्यापक भावना से संकीर्ण होती है, जबकि भारतीय संस्कृति में मानव-समूहों को धर्म, जाति, समाज और मानवीय गुणों की दृष्टि से ही देखा जा रहा है । मानव जाति के विभिन्न वर्गो को आर्य और अनार्य, धर्मात्मा और पापी, हिन्दू और अहिन्दू, ब्राह्मण और अब्राह्मण के दृष्टिकोण से तो देखा, किन्तु भारतीय और अभारतीय के दृष्टिकोण की प्रायः उपेक्षा की । इस दृष्टिकोण के अविकसित रहने का कारण हमारी भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों में ढूँढा जा सकता है । राष्ट्रीयता की भावना का विकास प्रायः छोटे-छोटे राज्यों में अधिक शीघ्रता से होता है जिनमें धर्म, संस्कृति एवं भाषा की एकता हो । या जिन देशों के निवासियों को सामूहिक रूप से विदेशों की सत्ता का सामना करना पडता है, वहाँ भी राष्ट्रीयता का भाव विकसित हो जाता है । ये दोनों ही बातें भारत पर लागू नहीं होती । हाँ मुसलमानी राज्य और अंग्रेजी शासन के दिनों में अवश्य हमें किसी विधर्मी या विदेशी सत्ता की अधीनता का अनुभव सामूहिक रूप से हुआ है अतः कुछ काल के लिए हमें राष्ट्रीयता का संचार हुआ, जो कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रायः विलुप्त-सा हो गया । ध्यान रहे, राष्ट्रीयता का स्फुरण प्रायः ऐसे ही अवसरों पर होता है, जबकि समस्त राष्ट्र का सामूहिक रूप से किसी अन्य राष्ट्र से संघर्ष हो । यदि आज हमारा पाकिस्तान या चीन से युद्ध छेडा जाता है तो निश्चित रूप से हमारे हृदय में राष्ट्रीयता की लहर उद्वेलित होने लगेगी ।

यधपि राष्ट्रीयता का रूप सभी देशों और सभी कालों में एक-जैसा नहीं रहा है, किन्तु इससे मिलती-जुलती भावना प्रायः सभी जातियों के इतिहास से मिलती है । आर्य जाति की रक्षा के लिए रावण के विरूद्ध राम के द्वारा किया गया युद्ध, या सोमनाथ की रक्षा के लिए उत्तर भारत के अनेक प्रमुख

क्षत्रिय-नरेशों द्वारा किया गया युद्ध, या चितोडगढ के मान के लिए किए गए, 'जौहर व्रत', या महाराणा प्रताप की अकबर के आगे सिर न झुकाने की प्रतिज्ञा, या गुरू तेजबहादुर का हिन्दू धर्म के लिए दिया 'शीशदान', या वीर हकीकतराय का जीते-जी दीवार में चुना जाना स्वीकार किया जाना-ये सब घटनाएँ उसी व्यापक भावना से अनुप्राणित हैं; जिसे हम चाहे जाति-रक्षा की भावना कहें या धर्मरक्षा की भावना, किन्तु उसका मूल रूप सर्वत्र एक की है ।

'राष्ट्रीयता' को हम किस रस में स्थान दें ? राष्ट्रीयता का अर्थ देश-प्रेम भी किया गया है, अतः कदाचित् कुछ विद्वान इसे रति भाव से सम्बंधित मानें । अपने देश की दुर्दशा को देखकर भी राष्ट्रीयता का संचार होता है, अतः उसे 'करूणा' से भी सम्बन्धित बताया जा सकता है । देश-प्रेम के लिए संघर्ष और युद्ध भी किया जाता है, अतः इसे वीर-रस में स्थान देने की बात भी सोची जा सकती है । देश के सुधार के लिए क्रान्ति का-इन्कलाब जिन्दाबाद-का आह्वान भी किया जा सकता है, अतः इसे 'रौद्र-रस' में स्थान देना भी उचित है । देश-प्रेम से अभिभूत व्यक्ति अपने देश पर अत्याचार करने वाले विदेशियों को धृणा की दृष्टि से देखता है; अतः इसे धृणा या जुगुप्सा के आधार पर विकसित होने वाले भाव बीभत्स में भी स्थान देने की कल्पना की जा सकती है । अपने देश पर भारी विपत्ति की आशंका से भय का भी संचार सम्भव है, अतः भयानक रस से भी इसका सम्बंध है । भारत माता की पूजा करने वाले देशभक्तों को ध्यान में रखते हुए इसे 'भक्ति-रस' का भी दूसरा रूप बताया जा सकता है । इस प्रकार प्रायः सभी रसों से इसका कुछ-न-कुछ संबंध है, जो इसकी व्यापकता को सूचित करता है, किन्तु हमारी मूल समस्या का समाधान इनसे नहीं होता ।

हमारे विचार से राष्ट्रीयता के मूल में आत्म-गौरव एवं जाति की रक्षा के उत्साह का भाव रहता है, अतः इसे 'वीर रस' के अन्तर्गत लिया जाना चाहिए । वीर रस के प्रायः सभी संचारियों और अनुभवों का विकास राष्ट्रीयता में भी होता है-अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्रीयता वीर रस का ही एक रूप है ।

हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता

हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता के मुख्यतः दो रूप मिलते हैं, एक तो विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनके वंशजों के अत्याचार के विरूद्ध और दूसरा ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रिया के रूप में । हमारे प्राचीन काव्य (आदिकाल से रीतिकाल तक) में पहला रूप उपलब्ध होता है, जबकि आधुनिक काव्य में दूसरा । यहाँ क्रमशः दोनों पर प्रकाश डाला जाता है ।

(क) प्राचीन हिन्दी काव्य – हिन्दी की अनेक आरम्भिक एवं मध्यकालीन रचनाओं में वीर रस का चित्रण तो पर्याप्त मात्रा में हुआ है, किन्तु उसमें राष्ट्रीयता का व्यापक भाव सर्वत्र उपलब्ध नहीं होता । महाकवि चन्द बरदायी के काव्य-पृथ्वीराज रासो-में विभिन्न युद्धों का आयोजन व्यक्तिगत द्वेष के आधार पर होता है, अतः उसमें राष्ट्रीयता का विकास नहीं मिलता । हाँ, केवल जाति-गौरव के रूप में उसकी व्यंजना अवश्य उसमें यत्र तत्र मिलती है ।

वस्तुतः रासो का रचयिता राजपूत गौरव से अधिक ऊँचा नहीं उठा पाता । उसकी दृष्टि इतनी अधिक संकुचित है कि पृथ्वीराज और गोरी के संघर्ष को भी जातीय या राष्ट्रीय संघर्ष के रूप में नहीं देख पाता ।

मध्यकाल में राजस्थान के अनेक डिंगल कवियों ने जातीयफलक गौरव से अनुप्राणित मुक्तक छन्दों की रचना की है । उस युग में समस्त हिन्दू गौरव के प्रतिनिधि प्रतीक महाराणा प्रताप थे । इन कवियों ने इसी महापुरूष को आलम्बन बनाकर काव्य-रचना की है । बीकानेर के महाराजा पृथ्वीराज ने व्यक्तिगत रूप से अकबर की प्रभुसत्ता को मान्यता दे दी थी, किन्तु उनकी दृष्टि में जब तक महाराणा प्रताप स्वतंत्र थे, हिन्दू गौरव की पताका मुक्त रूप से फहरा रही थी । जब उन्होंने सुना कि महाराणा प्रताप भी अकबर की अधीनता स्वीकार कर रहे हैं तो उन्हें लगा, मानों हिन्दू-गौरव का सूर्य अस्त हो रहा है, अतः इस अवसर पर उन्होंने महाराणा प्रताप को लिखा है कि-

पटकूँ मूँछा पाण कै पटकूँ निज तन करद ।

दीजे लिख दीवाण, इण दी महली बात इक ।

अर्थात् हिन्दू–गौरव अकबर के आगे नत–मस्तक हो गया है, यह सोचकर अपनी मूँछें नीची कर लूँ या अपने तन में कटारी भोंक लूँ । दीवान(महाराणा की उपाधि) ! इन दो में से एक बात लिख दीजिए ।

विदेशी विधर्मियों के वंशजों के आगे सिर न झुकाने वाली राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रहरी महाराणा प्रताप के यशोगान में इन राजस्थानी कवियों की वाणी मुक्त रूप से फूट पडी है । अकबर के दरबारी होते हुए भी प्रताप का यशोगान करना इनकी साहसशीलता का परिचायक है । श्री पृथ्वीराज राठौर ने अपने अनेक दोहों में अभारतीय सत्ता के प्रतीक अकबर की निन्दा और महाराणा प्रताप के गुणों की प्रशंसा बारम्बार की है–

''अइरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकडा ।

नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी ।

भाई एहडा पूत जण, जेहडा राणा प्रताप ।

अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै साँप ।

जासौ हाट बात रेहसी जग, अकबर ठग जासी एकार ।

हैं राख्यो खत्री धर्म राणै सारा लें बरत्ती संसार ।।''[१]

पृथ्वीराज की भाँति डिंगल के अन्य प्रसिद्ध कवि दुरसाजी ने भी महाराणा प्रताप की प्रशंसा में अनेक मार्मिक दोहों की रचना करके अपने जातीय प्रेम का परिचय दिया है । कहा जाता है कि महाराणा प्रताप के देहावसान का समाचार दुरसाजी ने उस समय सुना, जबकि वे अकबर के दरबार में थे । उक्त अवसर पर भरे दरबार में प्रताप की गौरव–गाथा का गुण–गान करते हुए दुरसाजी ने यह छप्पय कहा–

भले ही आज का आलोचक महाराणा प्रताप के इस यशोगान को राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत न माने, किन्तु इसमें उस जातीय गौरव की व्यंजना अवश्य मिलती है, जो कि राष्ट्रीयता का प्राण है । ध्यान देने की बात यह है कि वैभव एवं ऐश्वर्य के दाता अकबर को छोडकर जंगलों में भटकने वाले महाराणा प्रताप की प्रशंसा उन्होंने किसी व्यक्तिगत लाभ की आशा से नहीं की । यदि उनमें जातीयता की व्यापक भावना न होती, तो सम्राट अकबर के विरोधी के लिए ऐसे प्रशंसात्मक शब्दों का प्रयोग असम्भव होता ।

मध्यकाल में महाराणा प्रताप के अलावा हिन्दू राष्ट्रीयता के संरक्षक छत्रपति शिवाजी एवं महाराणा छत्रसाल रहे है । इन दोनों महापुरूषों को आलम्बन मानकर महाकवि भूषण ने ओजस्वी काव्य की रचना की । कुछ विद्वानों के विचार से भूषण ने मुस्लिम जाति के लोगों के लिए हलके शब्दों का प्रयोग किया है, अतः उनमें राष्ट्रीय भावना का स्फुरण नहीं माना जा सकता, किन्तु वास्तविकता यह नहीं है । उस युग में औरंगजेब के अत्याचारों के कारण देश की बहुसंख्यक हिन्दू जनता दुःखी हो रही थी–हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति खतरे में पड गयी थी, ऐसी स्थिति में शिवाजी ने जो कार्य किया वह राष्ट्रीय महत्त्व का था । दूसरे, महाकवि भूषण शिक्षा जी की प्रशंसा उनके व्यक्तिगत वैभव के आधार पर नहीं करते, अपितु उन्होंने उन्हें राष्ट्र के रूप में चित्रित किया है–

वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे, राम नाम राख्यो अति रसना सुधर में ।

हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की कांधे में जनेऊ राख्यो, मालाराखी गर में ।

मीड राखे मुगल, मरोडिराखे पातसाह, बैरी पीसि राखे दरदान राख्यो कर में ।

राजन की हद राखी तेगबल सिवराज, देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो गर में ।

यह भी ध्यान रहे भूषण ने प्रारम्भिक मुगल शासकों की प्रशंसा भी की है–

बब्बर अकब्बर हुमाऊँ हद्द बाँध गये दो में एक करी न कुरान-वेद ब्रह्म की ।

डॉ० विमल कुमार जैन ने लिखा है कि-''भूषण मुसलमानों के विरोधी नहीं थे, वरन् औरंगजेब के विरोधी थे, जिसने अपने पूर्वजों के बनाये हुए सुन्दर मार्ग को छोडकर हिन्दुओं पर आपत्तियों के पहाड ढा दिए थे । भूषण जाति द्वेष के शिकार नहीं थे, वरन् एक सच्चे राष्ट्र-भक्त थे ।''[२] मध्यकाल में इन कवियों के अतिरिक्त गोरेलाल, सूर्यमल मिश्र, जोधराज आदि ने भी वीर-भावनाओं की व्यंजना की है, जिसमें यत्र-तत्र आत्म-गौरव एवं जातीयता का स्फुरण भी दृष्टिगोचर होता है ।

आधुनिक हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीयता

आधुनिक हिन्दी-काव्य का तो विकास ही उस समय हुआ, जबकि समूचे राष्ट्र में ब्रिटिश शासकों के विरूद्ध स्वतंत्रता का आन्दोलन चल रहा था, अतः आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता की व्यंजना होना स्वाभाविक था । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके युग के अन्य कवियों ने राष्ट्र की दुर्दशा का चित्रण करते हुए भारत की जनता को जागृत करने का प्रयत्न किया है । भारतेन्दु की कुछ कविताओं में तो राष्ट्रीयता का स्वर बहुत तेज हो गया है । अंग्रेजों की अफगान-विजय पर उन्होंने 'विजय-वल्लरी' कविता लिखी, जिसमें विदेशी शासकों की आलोचना स्पष्ट रूप से की गयी है-

''स्ट्रैजी डिजरैली लिटन चितय नीति के जाल ।

फसि भारत जरजर भयो काबुल युद्ध अकाल ।।

सत्रु सत्रु लडवाइ दूर रहिं लखिय तमासा ।

बल देखिये जाहि ताहि मिलि दीजै आसा ।।''[३]

भारतेन्दु की राष्ट्रीयता का क्षेत्र बहुत व्यापक है । उन्होने अपने देश के सब धर्म सम्प्रदायो, सभी भाषाओ और सभी वर्गो के साथ प्रेम प्रदर्शित किया ह । साथ ही उन्होने स्वदेशी भाषा, स्वदेशी वस्त्रो और स्वराज्य का समर्थन भी बारम्बार किया है । इस सबध मे हमने विस्तृत रूप से चर्चा एक निबन्ध मे 'भारतेन्दु काव्य-साधना' में की है ।

द्विवेदी युग के अनेक कवियों ने राष्ट्रीयता की भावना व्यंजित की है, जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान और सोहनलाल द्विवेदी उल्लेखनीय हैं । गुप्तजी की राष्ट्रीयता का मार्मिक रूप 'भारत-भारती' में दृष्टिगोचर होता है । उसकी यह प्रारम्भिक पंक्ति-''हम कौन थे, क्या हो गए...आओ विचारें हम सभी ।''[४] ही पाठक के हृदय में राष्ट्रीयता का संचार कर देती है । इसके अतिरिक्त गुप्तजी ने अपने काव्य ग्रन्थों में भारत के प्रायः सभी धर्म-सम्प्रदायों को सहानुभूतिपूर्वक स्थान दिया है ।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी में राष्ट्रीयता का स्वर अंग्रेज शासकों के प्रति विद्रोही रूप में प्रस्फुरित हुआ है । उन्होंने अपनी कविताओं के द्वारा अनेक युवकों को राष्ट्र के लिए आत्म-बलिदान की प्रेरणा दी है । उनकी 'जवानी' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए ।

''द्वार बलि कां खोल चल भूडोल कर दें, एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दें !

मसल कर अपने इरादों सी उठाकर, दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दें !

रक्त है ? या नसों में क्षुद्र पानी, जाँच कर तू सीस दे देकर जबानी !''[५]

यधपि यहाँ केवल शौर्य भाव की व्यंजना है, किन्तु इसका लक्ष्य राष्ट्रीय स्वतन्त्रता होने के कारण इसे राष्ट्रीयता का ही अंग मान सकते हैं ।

'खूब लडी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।' जैसी ओजपूर्ण कविताओं की रचना करने वाली प्रसिद्ध कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान ने अपने गीतों में युवकों को स्वतंत्रता के लिए मर मिटने का आह्वान किया है । वे बहिन के रूप में अपने देश के भाइयों को चुनौती देती हुई कहती है कि–

आते हो भाई ! पुनः पूछती हूँ–विषमता के बंधन की है लाज तुमको ?

तो बंदी बनो, देखो बन्धन है कैसा, चुनौती यह राखी की है आज तुमको ।।

इसी प्रकार ''पुरस्कार कैसा ?' कविता में वे लिखती है कि–

''आज तुम्हारी लाली से माँ के मस्तक पर हो लाली ।

काली जंजीरें टूटें, काली जमुना में हो लाली ।।

जो स्वतन्त्र होने को हैं पावन दुलार उन हाथों का ।

स्वीकृत है, माँ की वेदी पर पुरस्कार उन हाथों का ।।''(६)

श्री सोहनलाल द्विवेदी ने गाँधीवाद और राष्ट्रीयता का चित्रण अनुभूतिपूर्ण शब्दों में किया है । ''भैरवी'' में वे एक ओर तो भारत के अतीत गौरव का स्मरण करते हैं और दूसरी ओर अपने देशवासियों को जागृति का संदेश देते हैं–

''भूल गए क्या रामराज्य वह जहाँ सभी को सुख था अपना ।
जागो हिन्दू मुगल मरहठे, जागो मेरे भारतवासी ।
जननी की जंजीरें बजतीं जाग रहे कडियों के छाले ।
सुना रहा हूँ तुम्हें भैरवी, जागो मेरे सोने वाले ।।''(७)

इसी प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के कवियों ने देश–प्रेम की अभिव्यक्ति अनेक कविताओं में की है । फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि सन् १९२० से लेकर १९४७ तक के स्वातंत्र्य–आन्दोलन की पूरी झलक हिन्दी के किसी प्रबंध–काव्य में बलिदान की तुलना में हमारे कवियों की रचनाएँ हलकी ही पडती हैं । मैथेलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, पंत और निराला जैसे कवियों ने अनेक युवकों को फाँसी के तख्ते पर झूलते देखकर उसका स्पष्ट रूप से चित्रण अपने काव्य में नहीं किया । विशेषतः छायावादी कवि तो राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रायः विमुख से ही रहे है ।

अंत में कहा जा सकता है कि हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हो गया है तो राष्ट्रीयता की भावना का मंद पड जाना स्वाभाविक है । यह हमारे कवियों का कर्तव्य है कि जन–मानस में राष्ट्रीय भावों का स्फुरण करके उन्हें नव निर्माण की ओर अग्रसर करें ।

◖ संदर्भ ◗

(१)	पृथ्वीराज रासों	–	चंद्रबरदाई	–	पृष्ठ सं.१३२
(२)	हि.सा	–	रत्नाकर	–	पृष्ठ सं.१७९
(३)	विजय वल्लरी	–	भारतेन्दु	–	पृष्ठ सं.२४
(४)	भारत–भारती	–	मैथिलिशरण गुप्त	–	पृष्ठ सं.३२
(५)	जवानी(कविता)	–	माखनलाल चतुर्वेदी	–	पृष्ठ सं.११
(६)	पुरस्कार(कविता)	–	सुभद्राकुमारी चौहान	–	पृष्ठ सं.१९
(७)	भैरवी (कविता)	–	सोहनलाल द्विवेदी	–	पृष्ठ सं.४५